उ. **साझेदारी की परिभाषा** :– विभिन्न विधि शास्त्रियों ने अलग–अलग रूप में दी है, इनके अनुसार –

किम्बल के अनुसार – 'साझेदारी विभिन्न व्यक्ति जो करार करने की क्षमता रखते हैं, परस्पर एक करार है जिसके अनुसार वे अपने लाभ हेतू कोई विधि मान्य व्यवसाय करते हैं।'

कैण्ट के अनुसार – 'साझेदारी दो या दो से अधिक सक्षम लोगों को अपना धन, सम्पति और क्षय या कौशल इनमें से कुछ या सभी एक वैध व्यवसाय में लगाने और किसी निश्चित अनुपात में लाभ–हानि बांटने की संविदा है।'

पोलक के अनुसार – भारतीय परिस्थितियों के अनुसार पोलक द्वारा दी गई परिभाषा में ही कुछ संशोधन कर इसे साझेदारी अधिनियम, 1932 की धारा–4 में भागीदारी की परिभाषा दी गई है।

धारा 4 के अनुसार – साझेदारी उन व्यक्तियों के बीच का संबंध है जिन्होंने किसी ऐसे व्यवसाय के लाभों में हिस्सा पाने का करार कर लिया है जिसे वे सब चलाते हैं या उन सबकी ओर से काम करने वाला कोई एक व्यक्ति चलाता हो।

वे एक दूसरे के साथ साझेदारी में भाग लेते हैं –

ग्रामहिक – साझेदार संयुक्त रूप से फर्म कहलाते हैं और जिस नाम से वह व्यवसाय करते हैं उसे फर्म नाम कहते हैं। यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि फर्म का प्रत्येक व्यक्ति (साझेदार) उसका मालिक और एजेण्ट दोनों ही होता है अर्थात वह स्वयं साझेदार होता है इसलिए मालिक भी है तथा वह अन्य साझेदारों की ओर से भी कार्य करता है इसलिए वह एजेण्ट भी है।

आवश्यक तत्व :–

1. दो या दो से अधिक व्यक्ति होने चाहिए।
2. इन व्यक्तियों में परस्पर एक संविदा होनी चाहिए।
3. कोई कारबार विद्यमान होना चाहिए।
4. संविदा में, कारोबार से प्राप्त लाभ को आपस में बांटने का प्रावधान होना चाहिए।
5. कारोबार का संचालन सब साझेदारों के द्वारा या उनकी ओर से एक साझेदार की ओर से किया जाना चाहिए।

1. **दो या दो से अधिक व्यक्ति होने चाहिए** :–

साझेदारी के लिए कम से कम दो या दो से अधिक व्यक्तियों का होना आवश्यक है क्योंकि एक व्यक्ति द्वारा चलाया गया व्यापार एकल व्यापार कहलाता है और कोई भी अकेला व्यक्ति स्वयं का साझेदार नहीं हो सकता।

चुन्नीलाल भगवानदास बनाम अहमद लूथरा (A.I.R. 1960 केरल H.C.) इस Case में H.C. ने स्पष्ट किया कि यदि किसी अवस्था में दिवालिया होने के कारण साझेदारों की संख्या केवल एक ही रह जाती है तो ऐसी स्थिति में उस साझेदारी का अनिवार्य रूप से विघटन हो जायेगा।

अधिकतम साझेदार :–

भारतीय कम्पनी अधिनियम की धारा 11 के अनुसार बैंकिंग साझेदारी में अधिकतम 10 और अन्य व्यापारिक साझेदारी में अधिकतम 20 साझेदार हो सकते हैं इससे अधिक नहीं। यदि कभी साझेदार की संख्या अधिकतम से अधिक हो जाए तो ऐसी साझेदारी अवैध मानी जाएगी।

यहां ये भी स्पष्ट करना जरूरी है कि व्यक्ति शब्द में प्राकृतिक व कृत्रिम दोनों ही प्रकार के व्यक्ति शामिल है।

2. साझेदारों के मध्य संविदा होनी चाहिए :–

क्योंकि साझेदारी का जन्म संविदा से होता है अतः बिना संविदा साझेदारी की कल्पना असम्भव है। धारा 5 के अनुसार साझेदारी का जन्म संविदा से होता है किसी रीति–रिवाज से नहीं अर्थात एक संयुक्त हिन्दू परिवार कोई कारोबार करता है या बर्थी बोध पति–पत्नि की हैसियत से कारोबार चलाते हैं तो ऐसे कारोबार, कारोबार नहीं होगे क्योंकि उनके बीच वैध संविदा नहीं।

Ex. 3 Advocate मिलकर कार्य करते है और उनका आशय प्राप्त फीस को परस्पर बांटना है तो यह एक विधि मान्य साझेदारी होगी।

लक्ष्मीबाई बनाम रोशन लाल (A.I.R. 1976 Raj. H.C.) इस Case में Raj. H.C. ने कहा कि साझेदारी की संविदा लिखित में नहीं है परन्तु सभी साझेदारों के पारस्परिक सहव्यवहार तथा तीसरे पक्षकार के साथ उनका व्यवहार लेखा की पुस्तकों, लिपिक की गवाही, अन्य पत्र और स्वीकृतियों से ऐसा लगता है कि साझेदारी के सभी तत्व मौजूद है तो इसे साझेदारी मानेंगे अर्थात साझेदारी के लिए लिखित में होना आवश्यक नहीं है।

क्योंकि साझेदारी का जन्म संविदा से होता है अतः एक वैध साझेदारी के लिए आवश्यक है कि उनकी एक वैध संविदा हो अर्थात वैध संविदा की सभी शर्ते होना आवश्यक है जो भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 10 में दी गई है। धारा 10 के अनुसार अर्थात प्रस्ताव, स्वीकृति, प्रतिफल के अलावा (1) सक्षम पक्षकार (2) स्वतन्त्र सहमति (3) विधी पूर्ण उद्देश्य (4) विधिपूर्ण प्रतिफल (5) संविदा शून्य नहीं।

3. कोई कारोबार विद्यमान होना चाहिए –

एक वैध साझेदारी के लिए कुछ ना कुछ कारोबार का होना अत्यन्त आवश्यक है कारोबार शब्द को धारा 2 (बी) में परिभाषित किया गया है इसके अनुसार कारोबार में प्रत्येक व्यापार, पेशा एवं पेशावृत्ति सम्मिलित है।

कारोबार के विस्तृत परिभाषा के अनुसार प्रत्येक कार्य जिसको करने के समय धन एवं परिश्रम जुटाना पड़े और लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से किया गया कारोबार कहलाएगा।

विश्वनाथ बनाम नमकचन्द 1955 मद्रास H.C. इस Case में न्यायमूर्ति वेंकटरमन ने कहा कि साझेदारी वही हो सकती है जहाँ कोई कारोबार किया जा रहा हो, जहां करने के लिए कोई कारोबार ही न हो वहां साझेदारी का प्रश्न ही नहीं उठता ।

वृद्धिचन्द बनाम हरकचन्द इस Case में कहा गया "कोई भी कार्य जिसमें निगम और आगम दोनों सम्मिलित हो, वही कारोबार है अर्थात दोनों तत्व होना आवश्यक है।

Ex. :- A और B ने मिलकर 100 रूपये के गेहूं खरीदे और आपस मे बांट ली A, B के बीच साझेदारी नहीं हुई क्योंकि इन्होंने कोई कारोबार नहीं किया ये सह–स्वामी हो सकते है।

यदि A, B उस गेहूं को बेचते और उससे प्राप्त रकम को बांटते तो ये साझेदारी मानी जाती क्योंकि इसमें कारोबार के दोनों तत्व आगम और निगम शामिल है।

साझेदारी के लिए यह भी आवश्यक है कि व्यापार या कारोबार वर्तमान समय में किया जाना चाहिए यदि संविदा के अन्तर्गत कारोबार भविष्य में किया जाना निश्चित किया गया है तो ऐसा करार तब तक साझेदारी का सृजन नहीं करता जबकि निश्चित तारीख या उससे पहले कारोबार प्रारम्भ न हो जाए।

वे व्यक्ति जो कम्पनी के निर्माण हेतू परस्पर मिलकर कार्य करते हैं, साझेदार नहीं कहलाते। हालांकि उनका उद्देश्य कम्पनी के निर्माण के बाद कम्पनी का सदस्य बनकर साथ अर्जित करना है।

वे साझेदार नहीं है क्योंकि उनका वर्तमान उद्देश्य कम्पनी का निर्माण करना है, कारोबार करना नहीं अर्थात साझेदारी के लिए कारोबार का वर्तमान में विद्यमान होना आवश्यक है।

भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 23 के अनुसार निम्न उद्देश्य अवैध है अतः किसी साझेदारी का उद्देश्य धारा 23 के अनुसार कार्य करने का है। तो वह शून्य माना जायेगा।

धारा 23 के अनुसार –

1. किसी विधि द्वारा वर्जित हो
2. किया गया कार्य कानून के प्रावधानों को विफल कर दे
3. कपटपूर्ण हो
4. इससे किसी के शरीर या सम्पत्ति को नुकसान पहुंचता हो
5. अनैतिक हो
6. लोकनीती के विरूद्ध हो

यदि किसी साझेदार निर्माण करने का उद्देश्य उपरोक्त में से कोई है तो उद्देश्य अवैध होने के कारण साझेदारी शून्य मानी जायेगी।

4. **संविदा में कारोबार से प्राप्त लाभ को बांटने का प्रावधान होना** –

साझेदारी का यह भी एक आवश्यक तत्व है कि साझेदारी से प्राप्त लाभ को बांटने का संविदा में प्रावधान होना चाहिए। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि साझेदारों के मध्य हानि बांटने की संविदा है।

अतः साझेदारी में कोई व्यक्ति सिर्फ लाभ में हिस्सा बांटता है हानि में नहीं। अर्थात कोई भी व्यक्ति साझेदार नहीं हो सकता यदि उसे व्यापार से प्राप्त लाभ को बांटने का अधिकार न हो यहां लाभ का अर्थ शुद्ध लाभ से है खर्चे को घटाने के बाद बची शेष राशि शुद्ध लाभ कहलाती है।

साझेदार वास्तव में लाभ का बंटवारा करते है या नहीं इस बात का साझेदारी के अस्तित्व पर कोई फर्क नहीं पड़ता। अर्थात लाभ की बजाय कोई साझेदार प्रतिमाह या प्रतिवर्ष कोई निश्चित राशि भी ले सकता है।

काक्स बनाम हिकमैन इस case में स्पष्ट किया गया कि साझेदारी के लिए यह आवश्यक नहीं है कि कारोबार से प्राप्त लाभ बराबर–बराबर या किसी विशेष अनुपात में और किसी विशेष समय पर हिस्सा प्राप्त करने एवं अधिकार होना ही पर्याप्त होगा।

5. **कारोबार का संचालन सब साझेदारों के द्वारा या उनकी ओर से एक साझेदार द्वारा किया जाना चाहिए**

साझेदारी का कारोबार सब साझेदारों द्वारा या सबकी ओर से किसी भी एक पक्षकार द्वारा चलाया जाना चाहिए अर्थात निष्क्रिय व्यक्ति की ओर से सक्रिय व्यक्ति कार्य करता है और सक्रिय व्यक्ति द्वारा किए गए कार्यो से उत्पन्न दायित्व के लिए अन्य साझेदार भी उतरदायी होते हैं।

अर्थात साझेदारी करने वाले प्रत्येक व्यक्ति की दोहरी स्थिती होती है व मालिक व एजेण्ट दोनों होता है। मालिक इसलिए होता है वह अपनी ओर से कार्य करता है तथा एजेण्ट इसलिए होता है कि वह शेष निष्क्रिय साझेदारों की ओर से कार्य करता है।

निष्कर्ष :– उपरोक्त से स्पष्ट है कि साझेदारी को गठित करने के लिए उपरोक्त सभी तत्वों का होना आवश्यक है यदि उपरोक्त तत्वों में से किसी भी एक का अभाव है तो साझेदारी का निर्माण नहीं हो सकेगा यही बात **हीरालाल गोदालाल बनाम भागीरथ और रामचन्द्र एण्ड Compony** के Case में Bombay High Court ने कहा।

उ. भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 की धारा 56–71 तक फर्मो के पंजीकरण से संबंधित प्रावधान किए गए है। पंजीकरण करवाना व्यापार करने वालों के हित में है।

भारत में फर्म का पंजीकरण करवाना एच्छिक है अनिवार्य नहीं अर्थात फर्म के साझेदारों को पंजीकरण करवाने या पंजीकरण न करवाने की स्वतन्त्रता दी गई है। इंग्लैण्ड में अंग्रेजी विधि में फर्म का पंजीकरण न करवाने पर कुछ आर्थिक दण्ड लगाया जाता है परन्तु भारत में ऐसे अर्थदण्ड से संबंधित कोई प्रावधान नहीं है।

परन्तु भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा–69 के अनुसार पंजीकरण न करवाने पर कुछ अयोग्यता आरोपित की जाती है जिसको कोई व्यापारिक संस्था स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है वास्तव में इन्हीं अयोग्यताओं ने फर्म के पंजीकरण को आवश्यक बना दिया है।

लालचन्द रोशन लाल बनाम गुलाम मोहम्मद नाजिर अहमद A.I.R. 1986 J.&K. H.C.

J.&K. H.C. ने कहा कि अंपणीकृत फर्म न्यायालय में तीसरे पक्षकार के विरूद्ध वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता और ऐसा साझेदार भी जिसका नाम फर्म के पंजीकरण के साथ पंजीकृत नहीं हुआ है। न्यायालय में अपने सह–साझेदारों तथा तीसरे पक्षकार के विरूद्ध वाद दायर नहीं कर सकता। अर्थात किसी भी फर्म के पंजीकरण न होने से वह फर्म या उसका साझेदार किसी तीसरे पक्षकार के विरूद्ध वाद दायर नहीं कर सकते। इसी कमी को दूर करने के लिए भारत में भी अपंजीकृत फर्म के अर्थदण्ड न होते हुए भी फर्म का पंजीकरण करवाया जाता है।

प्रक्रिया की पंजीकरण :–

भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 58 में पंजीकरण से संबंधित प्रावधान किये गये है इसके अनुसार पंजीकरण के लिए निश्चित शुल्क के साथ निम्न विवरण होते हुए, ऐसे विवरण का उस क्षेत्र के जिसमे फर्म के व्यापार का कोई ज्ञान स्थित हो, रजिस्ट्रार को डाक से या स्वयं जाकर फर्म का पंजीकरण करवाया जा सकता है।

विवरण पत्र में :–

1. फर्म का नाम
2. फर्म के व्यापार का प्रमुख स्थान
3. उन अल्प स्थानों का नाम जहां फर्म ने व्यापार करना है
4. दिनांक जिस पर प्रत्येक साझेदार फर्म में शामिल हुए
5. साझेदारों के पूरे नाम व पत्ते
6. फर्म की अवधि

उपरोक्त विवरण पर सभी साझेदारों के या इस उद्देश्य के लिए अधिकृत उसके एजेण्ट के हस्ताक्षर होंगे इस विवरण पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति को युक्ति–युक्त रूप से तस्दीक (V.J.) भी करवाना होगा।

Indian Partnership Act Sec. 57 के अनुसार राज्य सरकार अपने राज्य के लिए फर्मो के पंजीकरण हेतू रजिस्ट्रार की नियुक्ति कर सकती है। ऐसे रजिस्ट्रार को एक लोक सेवक समझा जाता है लोक सेवक की परिभाषा I.P.C. की धारा 21 में दिया गया।

जब रजिस्ट्रार के पास उपरोक्त विवरण शुल्क सहित आवेदन पत्र प्राप्त होता है और रजिस्ट्रार इसे

जांचने के बाद अगर इस बात से सन्तुष्ट हो जाए कि धारा 58 की सभी शर्ते पूरी कर ली गई है तो वह उपरोक्त विवरण को फर्मो के रजिस्टर में दर्ज कर देगा अर्थात उपरोक्त विवरण को लेखबद्ध कर देगा।

इस संबंद्ध में ये बताना भी महत्वूपर्ण है कि रजिस्ट्रार केवल अंकन करने वाला Officer है और रजिस्ट्रार, रजिस्टर में केवल उन्हीं तथ्यों को लिखेगा जो कि प्रस्तुत किये गए विवरण पत्र में लिखे है अर्थात यदि विवरण पत्र में लिखी गई सूचना सही है तो ऐसी स्थिति में रजिस्ट्रार उसे रजिस्टर में दर्ज करने के लिए बाध्य होगा। उसे इस कार्य में अपने विवेक से कार्य करने की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है।

क्योंकि फर्म का पंजीकरण करवाना अनिवार्य न होकर ऐच्छिक है अतः एक साझेदार दूसरे साझेदार को फर्म के पंजीकरण में शामिल होने के लिए बाध्य नहीं कर सकता।

विधि शास्त्री **लिण्डले** के अनुसार, रजिस्ट्रार के पास विवरण पत्र पहुंचते ही पंजीकरण पूर्ण हो जाता है विवरण पत्र का Office में दाखिल करना और रजिस्टर में लिखना लिपिकीय वर्ग का कार्य है और इसके अभाव में फर्म को लाभों से वंचित नहीं किया जायेगा।

यदि उपरोक्त विवरणिका में कोई कमी रह जाए या उस फर्म के नाम से पहले उसी नाम की फर्म चलती हो तो रजिस्ट्रार ऐसे फर्म का पंजीकरण करने से इन्कार कर सकेगा फर्म का नाम सम्राट, राजाधिराज, महाराज, सम्राज्य, राजा, रानी आदि राज्य से लिखित अनुमति लेने पर ही रखा जा सकता है अन्यथा नहीं।

पंजीकृत न करने के प्रभाव :–

भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 69 में फर्म के पंजीकरण न करवाने पर पड़ने वाले प्रभाव से संबंधित प्रावधान किए गए है –

1. कोई भी साझेदार अन्य साझेदारों पर वाद प्रस्तुत नहीं कर सकेगा – धारा 69 (2) के अनुसार जब तक फर्म का पंजीकरण न हुआ हो, तब तक वाद प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति का नाम फर्म के रजिस्टर में साझेदार के रूप में नहीं लिखा जायेगा और वह स्वयं या उसका एजेण्ट संविदा से उत्पन्न होने वाले अधिकारों को लागू करवाने के लिए फर्म के किसी साझेदार के विरूद्ध वाद दायर नहीं कर सकता।
2. फर्म किसी साझेदार के विरूद्ध वाद दायर नहीं कर सकती – जब तक फर्म का पंजीकरण न हुआ हो अर्थात फर्म का नाम रजिस्ट्रार Office के रजिस्टर में न लिखा हो तब तक किसी भी फर्म को साझेदार के विरूद्ध वाद दायर करने का अधिकार नहीं होगा।
3. साझेदार, फर्म के विरूद्ध वाद दायर नहीं कर सकते – जब तक धारा 58 की शर्तो को पूरा करके फर्म का पंजीकरण नहीं करवाया जाता तब तक ऐसी फर्म के साझेदार अपंजीकृत फर्म के विरूद्ध वाद दायर नहीं कर सकते।
4. तीसरे पक्षकार के विरूद्ध वाद दायर नहीं कर सकते – भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 69 से 71 सबसे महत्वपूर्ण प्रावधान है कि जब तक फर्म का पंजीकरण नहीं करवाया जाता तब तक फर्म किसी तीसरे पक्षकार के विरूद्ध वाद दायर नहीं कर सकती इसके अलावा इस अपंजीकृत फर्म के साझेदार भी साझेदार की हैसियत से किसी तीसरे के विरूद्ध वाद दायर नहीं कर सकते।

यहां यह स्पष्ट करना जरूरी है कि तीसरा पक्षकार ऐसी अपंजीकृत फर्म के विरूद्ध और ऐसी अपंजीकृत फर्म के साझेदार के विरूद्ध वाद लाने का अधिकार रखते है।

निम्न अधिकारों पर पंजीकृत न करवाने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता :–

1. अपंजीकृत फर्म के विरूद्ध तीसरा पक्षकार वाद कर सकता है।

2. कोई साझेदार फर्म विघटन करने के लिए वाद कर सकता है।
3. विघटित फर्म में अपनी सम्पति या उसके हिसाब के लिए वाद दायर किया जा सकता है।
4. रिसीवर को दिवालिया साझेदार की सम्पत्ति पर कब्जा करने का अधिकार होगा।
5. 1000/– रू. तक के किसी दावे को लागू करवाने का अधिकार होगा।
6. यदि फर्म का कारोबार किसी ऐसे स्थान पर चलता है जिस स्थान पर साझेदारी अधिनियम के अधीन पंजीकरण से मुक्त घोषित किया गया है ऐसे स्थानों पर फर्म और साझेदारों के अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा अर्थात जिस स्थान पर फर्म का पंजीकरण मुक्त है ऐसे स्थानों पर पंजीकरण करवाने या न करवाने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और फर्म तथा उसके साझेदार के अधिकार बने रहते है ये स्थान भारतवर्ष से बाहर होंगे।

फर्म बूटालाल बनाम चमनलाल A.I.R. 1964 पंजाब इस case में पंजाब H.C. ने स्पष्ट किया कि फर्म को वाद करने की क्षमता प्राप्त करने के लिए फर्म का पंजीकरण करवाना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि इसके साथ यह भी आवश्यक है कि फर्म के सभी साझेदारों को "फर्मो के रजिस्टर" साझेदार के रूप में दिखाना आवश्यक है।

भारत संघ बनाम दुर्गादत्त विश्वनाथ A.I.R. 1961 असम इस case में असम H.C. ने फर्म का पंजीकरण वाद करते समय होना आवश्यक है अर्थात यदि वाद प्रस्तुत के बाद फर्म का पंजीकरण करवाया जाता है तो ऐसा वाद पंजीकरण के अभाव में अवैध माना जायेगा।

समस्या :– A,B,C,D एक अपंजीकृत फर्म के साझेदार है, A को दूसरे सभी साझेदार मिलकर फर्म से बाहर निकाल देते है, A इस निर्णय के विरूद्ध B,C,D के विरूद्ध वाद दायर करना चाहता क्या वह ऐसा कर सकता है।

यदि वाद दायर करने से पहले A के लिए फर्म की तथा फर्म साझेदार के रूप में अपने नाम पंजीकृत करवाना सम्भव न हो तो उसे केवल एक ही उपचार प्राप्त है कि फर्म के विघटन के लिए वाद दायर करे और विघटित फर्म में अपने हिसाब किताब के लिए वाद दायर करे।

निष्कर्ष :– उपरोक्त विवरण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है भारत में फर्म का पंजीकरण अनिवार्य न होते हुए भी प्रत्येक फर्म अयोग्यताएं आरोपित होने के डर से सबसे पहले फर्म का पंजीकरण करवाना अपना पहला कर्तव्य समझती है। अतः इस अयोग्यताओं ने फर्म के पंजीकरण को आवश्यक बना दिया।

कसौटी – (साझेदारी की कसौटी) – (जिस साझेदारी में अनुबन्ध के तत्व मौजूद है वही एक वैध साझेदारी है) –

1. इसे परखने हेतु गद्य या पारस की नहीं बल्की धारा 4 व 5 की आवश्यक शर्ते आवश्यक है।
2. केवल लाभों मात्र में बंटवारा की साझेदारी नहीं बल्कि अनुवाद धारा
   - A ऋणदाता द्वारा केवल लाभों में हिस्सा प्राप्त करना साझेदारी नहीं
   - B कर्मचारी या अभिकर्ता को हिस्सेदार नहीं माना जाता
   - C मृतक साझेदार की विधवा व बच्चे कुछ लाभ का प्रतिशत लेते हुए भागीदार नहीं होते
   - D ख्याति बैचने वाला हिस्सेदार नहीं (कोई एक)
   - E सहस्वामित्व भागीदार नहीं
   - F संयुक्त परिवार भागीदार नहीं
3. फर्म के प्रन्धन व संचालन में भाग लेना साझेदारों का प्रमुख कार्य हो
4. करोबार वैद्यानिक होना चाहिए।
5. साझेदारों का परस्पर कार्यो में सम्बन्ध या दायित्व होने चाहिए।

उ. Indian Contract Act 1872 की धारा 11 में संविदा करने में सक्षम व्यक्तियों का उल्लेख किया गया है और अवयस्क व्यक्ति को संविदा करने में सक्षम नहीं माना गया है अर्थात अवयस्क व्यक्ति संविदा करने के योग्य नहीं होता है।

क्योंकि फर्म का जन्म संविदा से होता है और अवयस्क व्यक्ति संविदा करने में सक्षम नहीं होता अतः अवयस्क व्यक्ति को फर्म में शामिल नहीं किया जा सकता क्योंकि अवयस्क द्वारा किया गया करार शून्य होता है।

अवयस्क द्वारा की गई संविदा शून्य होगी या शून्यकरणीय अर्थात 1903 से पहले अवयस्क द्वारा की गई संविदा की प्रकृति स्पष्ट नहीं थी परन्तु 1903 में प्रीवी कौसिंल ने निम्न case में एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

मोहरी बीबी बनाम धर्मोदास घोष 1903 P.C. इस case में P.C. ने स्पष्ट कहा कि अवयस्क द्वारा किया गया करार प्रारम्भ से ही शून्य होता है न कि शून्यकरणीय।

इस सिद्धान्त के बाद यह निश्चित हो गया कि अवयस्क व्यक्ति वैध संविदा नहीं कर सकती और यदि वह संविदा करता है तो ऐसी संविदा शून्य मानी जायेगी।

Indian Partenership Act की धारा 30 (1) के अनुसार कोई अवयस्क व्यक्ति फर्म का साझेदार नहीं हो सकता परन्तु उस फर्म के सभी साझेदार सहमति दे दे तो अव्यस्क को केवल साझेदारी के लाभों में शामिल किया जा सकता है।

धारा 30 (1) के तत्व :–

1. अवयस्क को साझेदार (फर्म का) नहीं बना सकते।
2. उसे केवल साझेदारी के लाभों में शामिल किया जा सकता है।
3. ऐसा करने के लिए उस फर्म के सभी साझेदारों की सहमति लेना आवश्यक है।
4. सहमति देने वाले पक्षकार तत्कालीन उपस्थित होने चाहिए अर्थात साझेदारों द्वारा दी गई सहमति भूतकालीन या भविष्यकालीन नहीं होनी चाहिए।

स्पष्टीकरण :– अव्यस्क को केवल लाभों में ही शामिल किया जा सकता है अर्थात अवयस्क का फर्म की हानियों के प्रति कोई उत्तरदायित्व नहीं होगा।

अव्यस्क के अधिकार :– एक अवयस्क को साझेदारी फर्म में निम्न अधिकार प्राप्त होते हैं–

1. वह साझेदारी में हुए लाभों में अपना हिस्सा (पूर्व निश्चित) प्राप्त कर सकता है।
2. वह संविदा में निश्चित किए गए फर्म की सम्पूर्ण सम्पत्ति में से हिस्सा प्राप्त कर सकते हैं।
3. अव्यस्क फर्म के हिसाब–किताब अर्थात रजिस्टर, बहियों आदि की जांच कर सकता है।
4. अव्यस्क साझेदारी के लाभ और फर्म की सम्पत्ति में हिस्सा प्राप्त करने के लिए न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर सकता है परन्तु यहां यह स्पष्ट करना जरूरी है कि ऐसा वाद करने से पहले उसे फर्म से संबंध समाप्त करने होंगे अर्थात फर्म को छोड़ना होगा।

5. अव्यस्क का हिस्सा फर्म के कार्यो के लिए उतरदायी होता है न कि अव्यस्क स्वयं अर्थात अव्यस्क का व्यक्तिगत रूप से कार्यो के लिए कोई उतरदायित्व नहीं होता परन्तु उसकी सम्पत्ति और लाभ में उसके हिस्से की सीमा तक सम्पति फर्म के कार्य के लिए उतरदायी होगी (धारा 30(3)।

6. वयस्कता प्राप्त करने की स्थिति – जब तक अव्यस्क जो कि किसी फर्म में केवल लाभों में साझेदार है वयस्क होने पर यदि साझेदार अपनी इच्छा से साझेदार बनना पसन्द करे तो –

(A) अव्यस्क के रूप में उसके अधिकार और दायित्व उसके साझेदार बनने की तारीख तक ही रहते हैं अर्थात जैसे ही वह व्यस्क होने पर साझेदार बनता है तो फर्म के सभी कार्यो के लिए वह अन्य साझेदारों की भांति ही उतरदायी होगी।

(B) वह फर्म की सम्पत्ति तथा फर्म का होने वाले लाभ में से उसी हिस्से का अधिकारी होगा जिसका कि वह अव्यस्क के रूप में अधिकारी था।

7. **यदि वाद साझेदार न बने**–

(A) सार्वजनिक रूप से सूचना देने की तारीख तक उसके अधिकार और दायित्व वही होगे जो अव्यस्क के रूप मे थे।

(B) सूचना देने की दिनांक के बाद उसका हिस्सा फर्म के कार्यों के लिए जिम्मेदार नहीं होगा अर्थात अव्यस्क के व्यस्क होने के बाद फर्म में न रहने की सूचना दे देता है तो उसकी सम्पत्ति फर्म कार्यों के लिए उतरदायी नहीं होगी।

(C) उसे फर्म की सम्पत्ति और साझेदार के लाभ में अपने हिस्से के लिए साझेदारों के विरूद्ध वाद दायर करने का अधिकार प्राप्त होगा।

(D) व्यस्कता प्राप्त कर लेने पर किंतु सार्वजनिक सूचना देने से पूर्व धारा 28 के अन्तर्गत वह अपने आप को साझेदार निरूपित करने के लिए उतरदायी होगा।

अतिरिक्त आयकर कमीश्नर बनाम उत्तमकुमार प्रमोद कुमार 1997 इस case में Court ने कहा कि धारा 30(2) से यह निष्कर्ष निकलता है कि अव्यस्क को भागीदारी के लाभों में शामिल किये जाने के लिए भी अव्यस्क तथा विद्यमान साझेदार के मध्य करार होना आवश्यक है केवल अव्यस्क की सम्पत्ति को ही फर्म द्वारा उपयोग में लाया जा सकता है।

वी.पी.आर. प्रभु बनाम एस.पी.एस. प्रभु A.I.R. 1985 केरल इस case में केरल H.C. ने स्पष्ट कहा कि किसी भी अव्यस्क को भागीदारी के लाभों में निम्न दो शर्तों पूरी करके शामिल किया जा सकता है–

1. फर्म के सभी साझेदारों की सहमति से
2. धारा 30(2) के अधीन अव्यस्क और साझेदारों के मध्य संविदा द्वारा
3. अव्यस्क द्वारा व्यस्क होने पर उसे 6 माह के अन्दर यह सार्वजनिक सूचना देनी होगी कि वह फर्म को साझेदार नही है अतः वह या उसकी सम्पत्ति फर्म के कार्यो के लिए उत्तरदायी नहीं होगा। अगर कोई साझेदार व्यस्क होने के 6 माह बीत जाने तक ऐसी सार्वजनिक सूचना नहीं देता तो ऐसा मान लिया जायेगा उसकी सूचना के अभाव से वह स्वयं और उसकी सम्पत्ति एक व्यस्क साझेदार के रूप में फर्म के कार्यो के लिए उत्तरदायी होंगे।

निष्कर्ष :– निष्कर्षतः यही तथ्य सामने आया है एक अव्यस्क साझेदारी में शामिल नहीं किया जा सकता परन्तु अगर साझेदारों की सहमति हो तो अव्यस्क को केवल लाभों में शामिल किया जा सकता है। अतः अव्यस्क की सम्पति ही फर्म के लिए lible होगी शारीरिक रूप से वह फर्म के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।